

डॉ. नामवर सिंह

सहज-दृष्टि की जटिल वाग्मिता



प्रफुल्ल कोलख्यान

असहमति, विचार और विवाद आलोचना से जुड़े होते हैं। विवादों का हितकर और सकारकत्मक पक्ष यह है कि इससे विचारों की द्वंद्वात्मकता बनी रहती है। अहितकर और नकारकत्मक पक्ष यह है कि विचारकों का व्यक्तिगत वैमनस्य विवाद के केंद्र में विचार की द्वंद्वात्मकता का भेष धरकर जम जाता है। वैमनस्य विचार का दूसरा पक्ष सामने नहीं लाता बल्कि उपस्थित पक्ष को विचारहीनता और हीन विचार की ओर ले जाता है। वस्तुत: जीवन-संघर्ष साहित्य में भाव-संघर्ष के रूप में संघटित होता है और आलोचाना में विचार-संघर्ष के रूप में प्रकट होता है। हिंदी आलोचना जीवन-संघर्ष से अधिक 'जीविका संघर्ष' रही है। कभी-कभार आलोचना लिखना या करना एक बात है तथा गहरे आत्मानुशासन, सम्यक न्याय-बोध एवं निष्कंप नैतिक दृढ़ता के साथ सार्थक, संगत और संघर्षशील आलोचना और बात।

किसी काम के लिए प्रेरणा और प्रतिज्ञा काफी नहीं होती हैं; आधार और आलंबन आवश्यक होता है। नामवर सिंह के साहित्यिक जीवन की शुरुआत कविता और निबंध से हुई थी। निबंध संग्रह 'बकलम खुद' नाम से छपा और 'नीम के फूल' नाम से कविता संग्रह छपने के लिए तैयार था, जो छप नहीं सका। इसके न छपने का कोई मलाल नामवर जी के मन में नहीं है। समय पर छप भी गया होता तब भी ऐसा नहीं कि आगे वे कविताएँ लिखते ही। गद्य लिखने में दिलचस्पी थी, शैली थी व्यंग्यात्मक। आलोचना लिखने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। दिलचस्पी नहीं थी, फिर यह कैसे हुआ कि नामवर जी आलोचना लिखते ही चले गये! दशा और दिशा ठीक करनेवाली आलोचना लिखा। नामवर सिंह अनायास लेखन से चलकर सायास लेखन की ओर बढ़ गये। श्रेय प्र.ले.सं की गोष्ठियों में होनेवाली बहसों, पढ़ी गयी रचनाओं पर होनेवाली वैचारिक चर्चाओं, लेखों, शिवदान सिंह चौहान के जेल जाने के बाद रामविलास जी के संपादन में निकले प्रगतिवाद पर केंद्रित 'हंस' तीन अंकों और बाँस फाटक पर की मार्क्सवादी किताबों की दुकान को है। नामवर जी के आलोचनाकर्म में प्रवृत्त होने में मार्क्सवाद और अध्यापन-कर्म की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। नामवर सिंह के आलोचनाकर्म का आधार है मार्क्सवाद और आलंबन है अध्यापन-कर्म।

> ***जीवन में रोटी बहुत जमीन घेरती है। रोटी खाने के बाद भी कुछ जमीन बची रहती है। इसी बची हुई जमीन पर सपनों का नाच होता है। अधिकतर लोग रोटी के साथ जमीन भी खाते हुए चलते हैं, और सपने ! सपनों का नाच खत्म हो जाता है। कुछ ही लोग जीवन में जमीन और सपना दोनों को बचाकर रख पाते हैं।***

अध्यापन-कर्म के साथ एक नैतिक दायित्व स्वाभाविक रूप से जुड़ा होता है। वस्तुत:, साहित्य का अध्यापन मानविकी के दूसरे ज्ञान-क्षेत्र में किये जानेवाले अध्यापन से भिन्न प्रकार का होता है। अध्यापन का बड़ा उद्देश्य नागरिक मन का अनुकूलन होता है जबकि साहित्य कई बार अनुकूलन प्रक्रिया को तोड़ता भी है। मत-भिन्नता, असहमति, विरोधिता और अर्थ-वैविध्य के लिए जगह बनाकर साहित्य अंत:करण के आयतन को बड़ा बनाता है। अध्यापन का काम पढ़ाने से अधिक पढ़ने के आनंद से परिचय कराने, पढ़ने की सामग्री का पता देने, जिज्ञासा उत्पन्न करने का होता है। अध्यापन का नया-नया तरीका ईजाद करने का होता है। नामवर जी के प्रयास से हिंदी अध्यापन में गुरू के

'चरणकमल' का स्थान हृदय और मस्तिष्क को मिला। खुलापन और मुक्त-संवाद की संभानाएँ सामने आईं। यह अकेले दम का काम नहीं था और न अकेले दम संभव हुआ, लेकिन पहल के मोल से कौन इनकार कर सकता है!

जे.एन.यू. के ढाँचा में हिंदी का माहौल नहीं था। इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन की तुलना में हिंदी विपन्न थी। हिंदी के विद्यार्थियों के भीतर से हीनता ग्रंथि निकलकर उन्हें इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के समकक्ष लाने की चुनौती थी। जे.एन.यू. के हिंदी पाठ्यक्रमों को बदलना जरूरी था। साथ ही वहाँ के बौद्धिक स्तर पर हिंदी के अध्यापक और विद्यार्थी को लाने का काम था। प्राइमरी स्कूल के टीचर का बेटा होने के एहसास के कारण पितृ-ऋण से उऋण होने के लिए स्कूली शिक्षा के लिए भी कुछ करने की आकांक्षा थी। इस आकांक्षा के अलावा यह बोध भी था कि स्कूल से लेकर वि.वि. तक हिंदी के पाठ्यक्रम को इसलिए भी बदलना जरूरी है कि इन्हीं संस्थाओं से लेखक पैदा होते हैं, पाठक पैदा होते हैं। ऐसा मौका मिला एन.सी.ई.आर.टी. के जरिये। पाठ्यक्रम बनाने के साथ ही अध्यापकों और विद्यार्थियों को नये पाठ्यक्रम की महत्ता बताना भी आवश्यक था। इस काम में लगे समय और ऊर्जा का कोई लेखा-जोखा नहीं है। 'लेखा-जोखा से बाहर का काम' करते हुए, नामवर सिंह ने कम लिखा, हमारी आकांक्षा और अपनी क्षमता के हिसाब से कम लिखा, कम लिखा यानी पोथी कम है। लेकिन इतना कम भी नहीं लिखा कि उनको मिलनेवाला सम्मान 'इनफ्लेटेड' लगे। नामवर सिंह का बोला हुआ लिखा-सा और लिखा हुआ बोलता-सा लगता है। ध्यान से देखें तो सारा लिखा हुआ, सारा बोला हुआ कुछ-कुछ किया हुआ-सा लगता है और किया हुआ लिखा हुआ-सा। नामवर सिंह को मिलनेवाला सम्मान और विरोध का बड़ा हिस्सा इस किये हुए से जुड़ा है। यह ठीक है कि 'शब्द भी कर्म' है, लेकिन कर्म तो फिर कर्म है!

जीवन में दुख है। दुख का कारण है। दुख के कारणों का निदान संभव है। मानव संस्कृति दुख के निदान खोजने की संस्कृति है। बुद्ध ने दुख के कारणों को एक तरह से समझा मार्क्स ने दूसरी तरह से समझा। मार्क्स ने समझा कि दुख का कारण सामाजिक संबंधों में है। व्याख्या से अधिक जरूरी है, सामाजिक संबंधों में बदलाव। सामाजिक संबंधों का आधार उत्पादन और वितरण संबंधों में है। उत्पादन और वितरण प्रणाली में बदलाव मार्क्सवाद का मूल संकल्प है। जिसके मन में दुख से मुक्ति की आकांक्षा है वह बुद्ध के पास

जाता है; मार्क्स के पास जाता है। कभी-कभी आंबेडकर और गाँधी के पास भी जाता है।

नामवर सिंह के लिए मार्क्सवाद सिर्फ आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक दर्शन ही नहीं है, दृष्टि भी है; आत्म-दृष्टि भी और विश्व दृष्टि भी। इसलिए नामवर सिंह के लिए मार्क्सवाद आप्त वचनों का कोई ऐसा समुच्चय नहीं है जिसके सैद्धांतिक सरणियों का सिर्फ अनुसरण किया जाये, अनुसृजन नहीं। वैसे भी, सृजनशील व्यक्ति अनुसरण करते हुए अनुसृजन ही करता है; ऊपर से जो अनुसरण दिखता है अंदर से अनुसृजन होता है। प्रेमचंद से लेकर नागार्जुन, यशपाल से लेकर राहुल तक उदाहरण भरे पड़े हैं। राजनीतिक दर्शन के रूप में मार्क्सवाद का एक पाठ है तो इस पाठ का सांस्कृतिक पक्ष भी है। हजारों साल की राज-संपोषित सांस्कृतिक परंपरा के जीवित-मृत अंश का प्रवाह और दूसरी ओर लगभग उतनी ही पुरानी लोक-समर्थित प्रवाह का द्वंद्व! इस द्वंद्व में नामवर सिंह लोक के साथ होते हुए भी अंध लोकवादी रुझान के प्रति सावधान हैं।

जीवन और साहित्य में रूप और अंतर्वस्तु को लेकर मत-भिन्नता रही है। अंतर्वस्तु का मूल आशय विचारधारा से होता है। साहित्य में विचारधारा का सवाल मार्क्सवादी संदर्भ से जुड़ता है। विचारधारा केंद्र में मार्क्सवाद है, विचारधारा का सवाल उठते ही कोई मार्क्सवाद का समर्थक या विरोधी हो सकता है; मार्क्सवाद से निरपेक्ष नहीं हो सकता है। मार्क्सवादी सिद्धांतों का कितना, कैसे और कैसा विनियोग साहित्य में संभव है, इस बात को लेकर विवाद रहा है। इस विवाद से जुड़ा हुआ सवाल साहित्य की स्वायतत्ता तक जाता है। स्वायतत्ता और सापेक्षता के संदर्भ में किस से स्वायतत्ता और कितनी सापेक्षता का सवाल भी उठता रहा है। आर्थिक आधार पर परिभाषेय 'सामाजिक वर्ग' और सांस्कृतिक आधार पर बने 'सामाजिक समूह' के द्वंद्वों के रचनात्मक निभाव का भी सवाल उठता है। इन सवालों से जूझते हुए रचना और आलोचना की आत्म-दृष्टि, विश्व-दृष्टि, जीवन-दृष्टि और कल्प-सृष्टि का निर्माण और विकास होता है। निर्माण और विकास की इस प्रक्रिया में रचना और आलोचना की मानसिक सरणी और मूल्य-वृत्ति संगुंफित होती है। आलोचना रचना के भीतर से बाहर की दुनिया को देखने के लिए भाषा के पार 'ट्रांसइंडिविजुअल' और 'इंपर्सनल' पक्ष का उद्घाटन करती है।

नामवर सिंह के बारे में 'विचारधारावादियों' का कहना है कि वे रूप पर बहुत जोर देते हैं। 'रूपवादियों' को शिकायत है कि अंतत: विचारधारा को महत्त्व देते हैं। निर्मल वर्मा

की कहानियों पर नामवर सिंह का मत एक के लिए उदाहरण है तो दूसरे के लिए अपवाद। नामवर सिंह का 'फार्म' लूलिएं गोल्डमान के 'फार्म ऑफ कंटेंट' की तरह अंतर्वस्तु का एक रूप है। वे जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि की तरह साहित्य की कल्प-सृष्टि को भी महत्त्व देते हैं। 'सामाजिक-वर्ग' की ही तरह 'सामाजिक-समूह' को भी वे महत्त्वपूर्ण मानते हैं। नामवर सिंह कृति विशेष की आलोचना के लिए अन्य कृतियों के वृहत्तर संदर्भ को, उस पूरे दौर और माहौल को कृति के अर्थोद्घाटन और मूल्यांकन के लिए जरूरी मानते हैं। परंपरा के साथ सरोकार के संदर्भ में मार्क्सवाद का उल्लेख करते हुए किसी सामज में इसकी सफल ग्राह्यता के लिए ऐतिहासिक संदर्भ की महत्ता पर जोर देते हैं। व्याख्या और आस्वाद से आगे साहित्य की सामाजिक भूमिका के लिए साहित्यालोचन को ऐतिहासिकता से जोड़ते हैं। नामवर सिंह इतिहास के महत्त्व को ही नहीं इतिहास में बस जाने के खतरे को भी जानते हैं। विचारधारा को महत्त्व देते हुए भी नामवर सिंह विचारधारा के अतिसार और अतिचार के प्रति सचेत करते हैं। निर्मल वर्मा की जीवन-दृष्टि के, उनकी राजनीति के विकास से असहमत होते हुए भी उनके कलाकार के महत्त्व को स्वीकारते हैं। अज्ञेय या निर्मल वर्मा के विचारों को गलत मानने का मतलब सही विचारवाले किसी मामूली लेखक से उनको घटिया रचनाकार मानना नहीं हो सकता है। विचार को साहित्यिक कृति के मूल्यांकन का एक मात्र आधार मानने के खतरा को नामवर जी सही ढंग से आँकते हैं। साहित्य के प्रति गहरे नैतिक बोध से संपन्न एकनिष्ठ गंभीरता, ठोस कृतियों पर सतत एकाग्र दृष्टि, भ्रष्ट न होनेवाली अविचल निष्ठा और चौतरफा विरोधी वातावरण के बीच निरंतर संघर्ष करने की प्रेरणा विरोधी से लेने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती है। गहरे नैतिक बोध के बल पर ही नामवर सिंह यांत्रिकता की तुलना में वैचारिक रूप से असहमत सर्जनात्मकता को महत्त्वपूर्ण मानने का बौद्धिक साहस रखते हैं। 'पार्टी लाइन' पर आँख मूँदकर चलने के खतरे और दर्द को जानते हैं इसलिए, जन-लेखन को पार्टी लाइनों पर की जानेवाली दिमागी कसरत से अधिक सर्जनात्मक मानते हैं।

संघटन का आधार चाहे जो भी हो, समाज हमें संघटित समूह के रूप में हासिल होता है। सामाजिक संबंधों में बदलाव के लिए समाज के संघटन के आधार को बदलना आवश्यक होता है। बिना आधार को बदले समाज का पुनर्गठन संभव नहीं होता है। आधार को बदले बिना पारंपरिक रूप से मिले सामाजिक संघटन को विघटित करना भी संभव नहीं होता है। संघटन और विघटन की प्रक्रिया परस्पर जुड़ी होती है।

जाति व्यवस्था के सामाजिक आधार पर फैली भारी सामाजिक अ-व्यवस्था के दर्द और अपनी सामूहिक कमजोरी को वे महसूस करते हैं। नामवर सिंह बहुत व्यथा के साथ ध्यान दिलाते हैं कि जाति व्यवस्था दूसरी जगहों पर भी खोजी जा सकती है किंतु इतनी कठोर और इतनी जटिल जाति व्यवस्था कहीं नहीं थी। कबीर, गाँधी, अम्बेडकर के विचार, प्रयास और आंदोलन के बाद भी यह आज मजबूत हो रही है। इसके पीछे की दूसरी ताकतों को समझते हुए नामवर सिंह वामपंथ की कमजोरी को भी रेखांकित करते हैं। क्योंकि 'वामपंथ ऐसे प्रश्नों को महज सांस्कृतिक समझता है, राजनीतिक नहीं। नामवर सिंह अपनी पहचान के लिए लड़ रहे सबाल्टर्न ग्रुप के प्रति, छोटे-छोटे सामाजिक समुदायों, वर्गों, समाजों के प्रति सहिष्णु होने और परिस्थितियों को समझने की जरूरत महसूस करते हैं। लेखकों की टुटपुँजिया मध्यवर्गीय जलन नामवर सिंह को परेशान करती है।

नामवर सिंह की आलोचना पद्धति विमर्श मूलक और प्रक्रिया प्रस्ताव परक है। विचार के स्तर पर विमर्श सधा और भाषा के स्तर पर इतना कसा होता है कि घेरे से बाहर जाना आसान नहीं होता है। प्रस्ताव इतना दृढ़ होता है कि अक्सर निर्णय की तरह आता है। पद्धति और प्रक्रिया स्वीकार लेने के बाद निर्णय और निष्कर्ष के आस-पास पहुँचना अनिवार्य हो जाता है। रेमेंड विलियम्स के संकेत को महत्त्वपूर्ण मानते हुए नामवर सिंह आधार और अधिरचना को अलगाव में नहीं बल्कि अंग-अंगी-भाव से जुड़ाव के रूप में देखते हैं। नामवर सिंह न सिर्फ कृतियों के ऐतिहासिक परिपरेक्ष्य की दृश्यमानता को बहाल करते हैं बल्कि खुद आलोचना के विकास की ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य को पुतली में सिकोड़कर आलोचना दृष्टि से कृतियों की दृश्यमानता को प्रांजल भी बनाते हैं।

विचार में शक्ति होती है। व्यंग्य में धार होती है। विचार के साथ व्यंग्य का संयोग विचार को धारदार बनाता है। विचार का धारदार होना और बात है, विचारधारा का होना और बात। धारदार विचार का अपना मोल है और विचारधारा का अपना। कुछ के पास धारदार विचार हैं, तो कुछ के पास विचारधारा है। धारदार विचारधारा तो अमोल होती है। बहुत थोड़े विचरक हैं जिनके पास धारदार विचारधारा है। जो कुछ भी मूल्यवान है, अनायास नहीं है, जीवन में भी नहीं, साहित्य में भी नहीं। दीर्घकालीन और

अविचल आयास ही तपस्या है। तपना हर किसी को पड़ता है। जो तप नहीं सकता वह रच नहीं सकता। तपा-तपाया विचार अपनी धार भी बहाल रखता है, धारा, गति और दिशा भी।

नामवर सिंह व्यंग्य-धर्मी विचारक हैं। उनके साहित्यिक जीवन की शुरुआत व्यंग्य से होती है। वे व्यंग्य की शक्ति से 'सम्मोहन' की हद तक प्रभावित प्रतीत होते हैं। आलोचना में इसका भरपूर उपयोग और कभी-कभी तात्कालिकता के दबाव में दुरुपयोग भी करते हैं, साँप को ही नहीं लकीर को भी पीटते हैं। नागार्जुन की तात्कालिक कविताओं के कालजयी होने का श्रेय नामवर सिंह 'व्यंग्य की विदग्धता' को देते हैं। नागार्जुन की ही नहीं कबीर की 'व्यंग्य की विदग्धता' को भी वे ठीक पहचनते हैं। नामवर सिंह का मानना है कि साहित्यक अभिरुचियाँ बीस-पच्चीस वर्ष की उम्र तक बन जाती हैं। उसके बाद प्रयास से ही अभिरुचियों का विकास होता है। ईमानदारी के साथ अपनी सीमा स्वीकार करते हैं कि उनके मुख्यत: काव्य का पाठक होने का कुछ असर कहानी संबंधी विवेचन में आ गया है। 'काव्याभास' को नामवर सिंह 'अनायास लेखन' से जोड़ते हैं। महत्त्वबोध के क्षय को 'अनायास लेखन' का परिणाम मानते हैं। 'अनायास लेखन' को 'अनायास ग्रहण' की प्रक्रिया से जोड़ते हैं। नामवर सिंह 'सोद्देश्यता' को सार्थकता मानते हुए कहानी की सफलता को शिल्प से और सार्थकता को समय की वास्तविकता से जोड़ते हैं। लगे हाथ यह भी कहते हैं कि यथार्थ नमक की तरह है, अर्थात जरूरी तो है लेकिन पर्याप्त नहीं। 'अनायास लेखन' के खतरों से सावधान करते हैं। वे हर घटना में अंतर्विरोध को लक्षित करते चलने को रचना के लिए गुणकारी नहीं मानते, युग के मुख्य अंतर्विरोध, बदलते हुए सामाजिक संबंध के बीच अंतर्विरोधों के बदलते हुए कोण अर्थात बाहरी और भीतरी यथार्थ की गत्यात्मकता को पहचानकर उसके सायास और सफल रचनात्मक विनियोग को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। अक्सर विचारधारा को संवेदना से भिड़ा दिया जाता है। नामवर सिंह सामाजिक संघर्ष के सिलसिले में व्यक्ति की सार्थक संवेदनाओं के जगने को रेखांकित करते हैं। वे फ्रेंच कथाकार सार्त्र के हवाले से 'पाठक' और 'पब्लिक' के अंतर का ध्यान दिलाते हैं। लेखक के यश के दायरा का पाठकों के दायरे से बड़ा होते जाना उन्हें शुभ लक्षण नहीं लगता है। सार्त्र ने इस स्थिति को साहित्यिक 'इनफ्लेशन' कहा है। हिंदी में इस साहित्यिक 'इनफ्लेशन' को नामवर सिंह चिंताजनक मानते हैं। इस चिंता से उबरने के लिए वे उदाहरण देते हैं कि 'वर्जीनिया वुल्फ ने किस तरह 'द कामन रीडर' के

जरिए सहज-दृष्टि का पुनरुद्धार किया; बल्कि साधारण पाठक की 'सहज-दृष्टि' से अपनी साहित्यिक-दृष्टि को समृद्ध किया। संतों की सहज-दृष्टि से लेकर प्रेमचंद साहित्य में निहित सहज-दृष्टि की शक्ति को पहचानते हैं साथ ही 'सहज-दृष्टि' और 'साधारण-दृष्टि' के अंतर को भी स्पष्ट करते हैं। नामवर सिंह पाठ के अंतिम प्रभाव को नाकाफी मानते हुए सार्थक रचने के साथ सार्थक पढ़ने को भी सायास, अर्थात रचनात्मक कार्य मानते हैं। खुद को मुख्यत: कविता का पाठक स्वीकारते हुए भी हिंदी कविता से अधिक कहानी में स्वस्थ सामाजिक शक्ति के होने को मानना, नामवर सिंह के आलोचनात्मक औदार्य एवं विवेक का उदाहरण है। आलोचनात्मक औदार्य एवं विवेक नामवर सिंह की मूल शक्ति भी है और सहज-दृष्टि की जटिल वाग्मिता का रहस्य भी है।

इतने से नामवर सिंह को समझा जा सकता है ? यह तो सुमेरू को अँकवार में लेने जैसा है!

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान